[1993] 1 उम० नि० प० 842

किशन सिंह और अन्य

बनाम

बिहार राज्य

11 जनवरी, 1993

न्यायमूर्ति ए० एम० अहमदी और न्यायमूर्ति एन० पी० सिंह

दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2)—धारा 319 और धारा 173—अपराध के दोषी प्रतीत होने वाले अन्य व्यक्तियों के विरुद्ध कार्यवाही करने की शक्ति—मामले में विचारण प्रारम्भ किए जाने से पूर्व और इसमें साक्ष्य लेखबद्ध किए बिना उक्त धारा 319 का आश्रय नहीं लिया जा सकता है।

दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2)—धारा 319—व्याप्ति और क्षेत्र—धारा 319 का क्षेत्र केवल उन मामलों तक ही सीमित है जिनमें संज्ञान के उपरांत विचारण के समक्ष अभिलिखित साक्ष्य से अपराध के किए जाने में अन्य व्यक्तियों के अंतर्वलित होने का पता चले, यह धारा सभी संज्ञान-उपरांत स्थितियों को लागू नहीं होगी।

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2)—धारा 193 और 319)—अपराध का सेशन न्यायालय द्वारा संज्ञान—सेशन न्यायालय अपराध का संज्ञान केवल तभी कर सकता है जब मामला उसे उक्त संहिता के अधीन मजिस्ट्रेट द्वारा सुपुर्द कर दिया जाए।

दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2)—धारा 193—अपराध का सेशन न्यायालय द्वारा संज्ञान—मजिस्ट्रेट द्वारा एक बार मामला सेशन न्यायालय को सुपुर्द कर दिए जाने पर, सेशन न्यायालय द्वारा आरम्भिक अधिकारिता वाले न्यायालय के रूप में किसी अपराध का संज्ञान करने की उसकी शक्ति पर अधिरोपित निर्बन्धन समाप्त हो जाएगा।

दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2)—धारा 180—मजिस्ट्रेट द्वारा अपराध का संज्ञान किए जाने की बाबत विवेक का प्रयोग—मजिस्ट्रेट द्वारा उक्त संहिता की धारा 200/204 के अधीन संज्ञान किए जाने की कार्यवाही किए बिना उसके द्वारा मात्र अपने विवेक का प्रयोग किया जाना संज्ञान किया जाना नहीं होगा।

दण्ड विधि—गलत उपबंध के अधीन अपराध का संज्ञान—यह सुस्थिर है कि एक बार यह निष्कर्ष निकाले जाने पर कि शक्ति विद्यमान है, किसी गलत उपबंध के अधीन शक्ति के प्रयोग किए जाने से आदेश अवैध या अविधिमान्य नहीं बन जाएगा।

1993(1) eILR(PAT) SC 1

इत्तिला देने वाले के अनुज पर वर्तमान दोनों अपीलार्थियों सहित बीस व्यक्तियों द्वारा लाठियों से आक्रमण किया गया। उसी दिन प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज कराई गई जिसमें सभी बीस व्यक्तियों के नाम हमलावर के रूप में थे। क्षतिग्रस्त व्यक्ति की अगले दिन अस्पताल में मृत्यु हो गई। अन्वेषण के दौरान इत्तिला देने वाले और अन्य व्यक्तियों के कथन अभिलिखित किए गए और विद्वान मजिस्ट्रेट के समक्ष आरोपपत्र प्रस्तुत किया गया जिसमें दोनों अपीलार्थियों के अलावा अठारह व्यक्तियों को अपराधी दर्शित किया गया। वर्तमान दोनों अपीलार्थियों के नाम उक्त रिपोर्ट में सम्मिलित नहीं थे क्योंकि अन्वेषक अधिकारी की राय में उनके अपराध के किए जाने में अंतर्वलित होने की बात सिद्ध नहीं हुई थी। इस प्रकार की एक अंतिम रिपोर्ट मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट के समक्ष प्रस्तुत की गई। संबंधित मजिस्ट्रेट ने रिपोर्ट में नाम दिए गए अठारह व्यक्तियों को सेशन न्यायालय के सुपुर्द कर दिया। जब मामला विद्वान सेशन न्यायाधीश के समक्ष विचारण के लिए आया तो दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 319 के अधीन एक आवेदन दिया गया जिसमें यह प्रार्थना की गई कि अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री से इन दोनों अपीलार्थियों के अंतर्वलित होने का भी पता चलता है, अतः उन्हें भी समनित किया जाए और उन्हें न्यायालय में आरोपपत्र में पहले नाम दिए गए अठारह व्यक्तियों के साथ अभियुक्त-व्यक्तियों के रूप में आरोपित किया जाए। तत्पश्चात् इन दोनों अपीलार्थियों को एक कारण बताओ नोटिस जारी किया गया जिसके उत्तर में उन्होंने कहा कि वे घटना स्थल पर उपस्थित नहीं थे और उनका नाम प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में मिथ्या लिया गया है और अन्वेषक अधिकारी ने ठीक ही उनका नाम न्यायालय में फाइल किए गए आरोपपत्र में छोड़ दिया था। विद्वान सेशन न्यायाधीश ने अपीलार्थियों के अभिवाक् को नामंजूर कर दिया और संहिता की धारा 319 के अधीन निहित विवेकाधिकार का प्रयोग करते हुए अपीलार्थियों को भी अन्य अठारह व्यक्तियों के साथ सह-अभियुक्त के रूप में पक्षकार बनाया। यह साक्ष्य लेखबद्ध किए जाने और वास्तविक विचारण के प्रारंभ होने से पूर्व लिया गया। तत्पश्चात् अपीलार्थियों ने उच्च न्यायालय में दाण्डिक पुनरीक्षण आवेदन फाइल किया और विद्वान सेशन न्यायाधीश द्वारा उनके विरुद्ध संज्ञान किए जाने से संबंधित पारित आदेश को चुनौती दी। उच्च न्यायालय ने दोनों पक्षकारों के विद्वान काउंसेल को सुनने के पश्चात् पुनरीक्षण आवेदन खारिज कर दिया। उच्च न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा पारित इस आदेश के विरुद्ध अपीलार्थियों ने संविधान के अनुच्छेद 136 के अधीन विशेष इजाजत से उच्चतम न्यायालय में अपील फाइल की। अपीलार्थियों के विद्वान काउंसेल ने यह दलील दी कि जब तक कि विचारण के दौरान साक्ष्य अभिलिखित न कर लिया जाए, सेशन न्यायालय को संहिता की धारा 319 के अधीन अन्वेषण के दौरान संगृहीत साक्ष्य और संहिता की धारा 173 के अधीन अग्रेषित रिपोर्ट के एकमात्र आधार पर अपीलार्थियों को सहअभियुक्त के रूप में पक्षकार बनाने और संज्ञान करने की कोई अधिकारिता नहीं थी क्योंकि संहिता की धारा 193 में इस बाबत स्पष्ट आदेश है। विचारणीय प्रश्न यह है कि क्या सेशन न्यायाधीश पूर्वोक्त तथ्यों को दृष्टिगत करते हुए उस प्रक्रम पर जब कार्यवाहियां उसके समक्ष लंबित थी विचारण प्रारंभ हुए बिना और इसमें साक्ष्य अभिलिखित किए बिना संहिता की धारा 161 के अधीन अभिलिखित दस्तावेजों जिनमें कथन भी सम्मिलित हैं के एकमात्र आधार पर संहिता की धारा 319 का आश्रय लेने में विधि की दृष्टि में न्यायोचित था? उच्चतम न्यायालय द्वारा अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित—दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 319 की उपधारा (1) का सामान्य परिशीलन किए जाने पर इस बाबत संदेह नहीं किया जा सकता कि जांच या विचारण के दौरान दिए गए साक्ष्य से यह प्रकट होना चाहिए कि ऐसे किसी भी व्यक्ति का जो अभियुक्त नहीं है और जिसने कोई अपराध किया है उसका विचारण अभियुक्त के सा किया जा सकता है। इस शक्ति का प्रयोग केवल तभी किया जा सकता है जब विचारण के दौरान साक्ष्य से ऐसा प्रतीत हो, अन्यथा नहीं। अत:, इस उपधारा में विचारण के दौरान साक्ष्य से कुछ ऐसा प्रतीत होना अनुध्यात है ताकि न्यायालय प्रथम दृष्टया यह निष्कर्ष निकाल सके कि वह व्यक्ति भी जिसे उसके समक्ष आरोपित नहीं किया गया है अपराध के किए जाने में अन्तर्वलित है और इसके लिए उसका उन व्यक्तियों के साथ जिनका नाम पहले पुलिस द्वारा लिया गया है विचारण किया जा सकता है। उस व्यक्ति का भी जिसे पहले छोड़ा जा चुका है संहिता की धारा 319 द्वारा प्रदत्त शक्ति की परिधि के अंतर्गत विचारण किया जा सकता है। अत: संहिता की धारा 319 का यथेष्ठ रूप में वर्तमान सरीखे किसी मामले में आश्रय नहीं लिया जा सकता है जहां विचारण के समय कोई साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया गया है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि ऐसा प्रतीत होता है कि अपीलार्थी अभियोजन पक्ष द्वारा विचारण के लिए पहले प्रस्तुत किए गए अन्य व्यक्तियों के साथ अपराध किए जाने में अन्तर्वलित हैं। (पैरा 15)

तब प्रश्न यह उद्भूत होता है कि क्या संहिता की धारा 319 की भांति संहिता के किसी अन्य उपबंध में ऐसी कोई शक्ति प्रदान की गई अथवा क्या इस प्रकार की शक्ति संहिता की स्कीम से विवक्षित है? न्यायालय उन दो अनुकल्पी रीतियों के बारे में पहले ही उल्लेख कर चुका है जिनमें संहिता की धारा 154 के अधीन पुलिस में सूचना दर्ज कराकर या मजिस्ट्रेट द्वारा परिवाद या सूचना प्राप्त किये जाने पर दण्ड विधि प्रवृत्त की जा सकती है। पुलिस द्वारा सूचना दर्ज किये जाने पर उसके द्वारा अन्वेषण किया जाएगा और संहिता की धारा 173 के अधीन इस पुलिस रिपोर्ट के आधार पर मजिस्ट्रेट द्वारा संहिता की धारा 190(1)(क) के अधीन संज्ञान किया जा सकेगा। पश्चात्वर्ती रीति में मजिस्ट्रेट संहिता की धारा 156(3) के अधीन पुलिस द्वारा अन्वेषण के लिए आदेश दे सकता है या यथास्थिति संहिता की धारा 190(1)(क) या (ग) के साथ पठित इसकी धारा 204 के अधीन अपराध का संज्ञान किए जाने से पूर्व धारा 202 के अधीन स्वयं जांच कर सकता है। मजिस्ट्रेट द्वारा एक बार अपराध का संज्ञान किए जाने पर वह (उन मामलों को छोड़कर जहां मामला धारा 191 के अधीन अंतरित कर दिया गया है) अपराधी का विचारण करने की कार्यवाही कर सकता है या उसे संहिता की धारा 209 के अधीन यदि अपराध अनन्यत: सेशन न्यायालय द्वारा विचारण किए जाने योग्य है विचारण के लिए सुपुर्द कर सकता है। जैसा कि पहले कहा गया कि संज्ञान अपराध का किया जाता है, न कि अपराधी का। (पैरा 17)

न्यायालय द्वारा एक बार अपराध का (अपराधी का नहीं) संज्ञान किये जाने पर वास्तविक अपराधी का पता लगाना न्यायालय का कर्तव्य बन जाता है और यदि वह यह निष्कर्ष निकालता है कि पुलिस द्वारा विचारण के लिए प्रस्तुत किए गए व्यक्तियों के अलावा अपराध के किए जाने में अन्य व्यक्ति भी अंतर्वलित हैं तो न्यायालय उन्हें पहले नाम दिए गए व्यक्तियों के साथ विचारण के लिए समन करने के लिए कर्तव्यबद्ध है क्योंकि उन्हें समन

किया जाना संज्ञान किए जाने की प्रक्रिया का मात्र एक भाग है। दोनों संहिताओं की धारा 193 की भाषा का अन्तर स्पष्ट कर दिया गया है। पुरातन संहिता में सेशन न्यायालय उस समय तक आरंभिक अधिकारिता वाले न्यायालय के रूप में किसी अपराध का संज्ञान नहीं कर सकता था जब तक कि अभियुक्त को उसे सुपुर्द न कर दिया जाए, जबकि वर्तमान संहिता के अधीन अभियुक्त शब्द के स्थान पर मामला शब्द प्रयोग करके निषेध को क्षीण कर दिया गया है। इस प्रकार, धारा 193 के सामान्य परिशीलन से, जैसी कि यह तत्समय विद्यमान है, यह स्पष्ट है कि संहिता के अधीन मजिस्ट्रेट द्वारा मामला एक बार सेशन न्यायालय को सुपुर्द किए जाने पर सेशन न्यायालय की आरंभिक अधिकारिता वाले न्यायालय के रूप में अपराध का संज्ञान करने की शक्ति पर अधिरोपित निर्बंधन जाता रहेगा। मजिस्ट्रेट द्वारा धारा 209 के अधीन मामला सेशन न्यायालय को सुपुर्द किए जाने पर धारा 193 के अधीन वर्जन सेशन न्यायालय में आरंभिक अधिकारिता वाले न्यायालय के रूप में अपराध का संज्ञान करने की पूर्ण और अनियंत्रित अधिकारिता समाविष्ट हो जाने के कारण दूर हो जाएगा और उसकी इस अपराध का संज्ञान करने की शक्ति में ऐसे किसी भी व्यक्ति या व्यक्तियों को समन किया जाना सम्मिलित है उसकी अपराध के किए जाने में सह-अपराधिता अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री से प्रथम दृष्टया परिलक्षित है। (पैरा 20)

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 190 में ऐसी विभिन्न रीतियां उपवर्णित हैं जिनमें मजिस्ट्रेट किसी अपराध का संज्ञान कर सकता है अर्थात् अपराधी को दंडित करने के लिए विधि को प्रवर्तित करने की दृष्टि से किसी अपराध के किए जाने को प्रकट करने वाले अभिकथन की अवेक्षा कर सकता है। इस उपबंध के अधीन अभिकथित रूप से किए गए अपराध का संज्ञान खण्ड (क), (ख) और (ग) में दिए गए तीन प्रकार से किया जा सकता है। इसका उद्देश्य किसी नागरिक की पुलिस के अत्याचारों के विरुद्ध उसे सीधे मजिस्ट्रेट के समक्ष समावेदन करने का अधिकार प्रदान करके यदि पुलिस कार्रवाई नहीं करती है या वह यह विश्वास करने का कारण रखता है कि पुलिस द्वारा ऐसी कोई कार्रवाई नहीं की जाएगी सुरक्षा सुनिश्चित करना है। यद्यपि "संज्ञान करना" अभिव्यक्ति परिभाषित नहीं की गई है। तथापि, इस न्यायालय के विभिन्न विनिश्चयों से यह स्थिर है कि जब मजिस्ट्रेट अभियोगों की अवेक्षा करे और परिवाद या पुलिस रिपोर्ट या सूचना में किए गए अभिकथनों की बाबत अपने विवेक का प्रयोग करे और यह समाधान होने पर कि अभिकथन, यदि साबित हो जाते है, तो अपराध गठित करेंगे अभिकथित अपराधी के विरुद्ध न्यायिक कार्यवाहियां प्रारंभ करने का विनिश्चय करे, तो यह कहा जाएगा कि उसने अपराध का संज्ञान कर लिया है। इस तथ्य को ध्यान में रखना आवश्यक है कि संज्ञान अपराध का किया जाता है न कि अपराधी का। मात्र विवेक का प्रयोग किया जाना उस समय तक संज्ञान किया जाना नहीं होगा जब तक कि मजिस्ट्रेट संहिता की धारा 200/204 के अधीन कार्यवाही के लिए ऐसा न करे। (पैरा 9)

चूंकि सेशन न्यायालय को संहिता की धारा 193 के अधीन अपीलार्थियों को समन करने की शक्ति प्राप्त है क्योंकि अपराध किए जाने में उनके अंतर्वलित होने की बात प्रथम दृष्टया मामले के अभिलेख से प्रकट है, न्यायालय को आक्षेपित आदेश में हस्तक्षेप करने का कोई कारण दिखाई नहीं देता है क्योंकि यह सुस्थिर है कि एक बार यह निष्कर्ष निकाले जाने

1993(1) eILR(PAT) SC 1

पर कि शक्ति विद्यमान है, किसी गलत उपबंध के अधीन शक्ति के प्रयोग से आदेश अवैध या अविधिमान्य नहीं बन जाएगा। (पैरा 21)

अवलंबित निर्णय

		पैरा
[1964]	[1964] 5 एस० सी० आर० 37 : जमुना सिंह और अन्य बनाम भदई शाह।	9

अनुमोदित निर्णय

[1985]	(1985) पी० एल० जे० आर० 640=(1985) क्रिमिनल एल० जे० 1238 : शेख लतफूर रहमान और अन्य बनाम राज्य।	3, 20

निर्दिष्ट निर्णय

[1991]	[1991] 1 उम० नि० प० 882=(1990) 4 एस० सी० सी० 580 : सोहनलाल और अन्य बनाम राजस्थान राज्य;	13
[1979]	[1979] 4 उम० नि० प० 773=ए० आई० आर० 1979 एस० सी० 339 : जोगिन्दर सिंह बनाम पंजाब राज्य;	12
[1979]	[1979] 3 उम० नि० प० 298=ए० आई० आर० 1978 एस० सी० 1568 : हरिराम सतपथी बनाम टीकाराम अग्रवाल;	17, 20
[1967]	ए० आई० आर० 1967=[1967] 2 एस० सी० आर० 423 एस० सी० 1167 : रघुवंश दुबे बनाम बिहार राज्य;	17, 20
[1966]	[1966] 1 एस० सी० आर० 560 : पी० सी० गुलाटी बनाम एल० आर० कपूर।	11, 14

अपीली (दांडिक) अधिकारिता : **1993 की दांडिक अपील सं० 24.**

संविधान, 1950 के अनुच्छेद 136 के अधीन पटना उच्च न्यायालय के आदेश और निर्णय के विरुद्ध विशेष इजाजत से अपील।

अपीलार्थियों की ओर से	सर्वश्री उदय सिन्हा और एन० पी० झा
प्रत्यर्थियों की ओर से	श्री बी० बी० सिंह

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति ए० एम० अहमदी ने दिया।

न्या० अहमदी—विशेष इजाजत मंजूर की गई।

2. क्या सेशन न्यायालय जिसे कोई मामला विचारण के लिए किसी मजिस्ट्रेट द्वारा सुपुर्द किया जाता है साक्ष्य अभिलिखित किए बिना ऐसे व्यक्ति को जिसका नाम दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (जिसे संक्षेप में "संहिता" कहा गया है) की धारा 173 के अधीन प्रस्तुत की गई पुलिस रिपोर्ट में नहीं है संहिता की धारा 319 द्वारा प्रदत्त शक्ति का प्रयोग करते हुए समन कर सकता है ताकि उसका इसमें पहले से दिए गए व्यक्तियों के साथ विचारण किया जा सके ? विधि का यह मूल प्रश्न इन अभिकथनों की पृष्ठभूमि में उद्भूत हुआ है।

3. तारीख 27 फ़रवरी, 1990 की सायं को इत्तिला देने वाले के अनुज उमाकांत ठाकुर पर बीस व्यक्तियों द्वारा लाठियों आदि से हमला किया गया जिसमें ये दोनों अपीलार्थी भी सम्मिलित थे। उसी दिन लगभग 9.30 बजे पूर्वाह्न एक प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज कराई गई जिसमें सभी बीस व्यक्तियों का हमलावरों के रूप में नाम था। क्षतिग्रस्त उमाकांत की अगले दिन पटना अस्पताल में मृत्यु हो गई। अन्वेषण के दौरान इत्तिला देने वाले व्यक्ति और अन्य लोगों के कथन अभिलिखित किए गए और एक आरोपपत्र जिस पर 10 जून, 1990 की तारीख थी तारीख 17 जून, 1990 को विद्वान मजिस्ट्रेट के न्यायालय को अग्रेषित किया गया जिसमें दोनों अपीलार्थियों के अलावा अठारह अन्य व्यक्तियों को अपराधी दर्शित किया गया था। वर्तमान दोनों अपीलार्थियों के नाम उक्त रिपोर्ट में सम्मिलित नहीं थे क्योंकि अन्वेषक अधिकारी की राय में अपराध के किए जाने में उनके अंतर्वलित होने की बात सिद्ध नहीं हुई थी। इस प्रकार की एक अन्तिम रिपोर्ट तारीख 4 सितम्बर, 1990 को मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट के समक्ष प्रस्तुत की गई जिस पर कोई आदेश पारित नहीं किए गए। संबंधित मजिस्ट्रेट ने रिपोर्ट में नाम दिए गए अट्ठारह व्यक्तियों को सेशन न्यायालय दरभंगा को, संहिता की धारा 209 के अधीन विचारण किए जाने के लिए सुपुर्द कर दिया। जब मामला विद्वान सेशन न्यायाधीश दरभंगा के समक्ष आया, तो संहिता की धारा 319 के अधीन यह प्रार्थना करते हुए एक समावेदन किया गया कि संहिता की धारा 173 के अधीन रिपोर्ट में उपाबद्ध अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री से दोनों अपीलार्थियों के अंतर्वलित होने की बात भी प्रकट है। अतः उन्हें समन किया जाना चाहिए और आरोपपत्र में पहले से नामित अट्ठारह व्यक्तियों के साथ अभियुक्त-व्यक्तियों के रूप में न्यायालय में आरोपित किया जाना चाहिए। तत्पश्चात् वर्तमान दोनों अपीलार्थियों को एक कारण बताओ नोटिस जारी किया गया जिसके उत्तर में उन्होंने यह दलील दी कि यद्यपि वे घटनास्थल पर उपस्थित नहीं थे, उनका नाम प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में मिथ्या दिया गया है और अन्वेषक अधिकारी ने न्यायालय में फाइल किए गए आरोपपत्र में ठीक ही उनका नाम नहीं दिया था। विद्वान सेशन न्यायाधीश ने अपीलार्थियों द्वारा किए गए अभिवाक् को नामंजूर कर दिया और उन्हें अट्ठारह व्यक्तियों के साथ सह-अभियुक्त के रूप में पक्षकार बनाते हुए संहिता की धारा 319 के अधीन अपने में निहित विवेकाधिकार का प्रयोग किया। इसमें कोई संदेह नहीं कि ऐसा वास्तविक विचारण के प्रारंभ से पूर्व अर्थात् कोई साक्ष्य अभिलिखित किए जाने से पूर्व किया गया। तत्पश्चात् अपीलार्थियों ने विद्वान सेशन न्यायाधीश द्वारा उनके विरुद्ध संज्ञान किए जाने से संबंधित पारित आदेश को चुनौती देते हुए पटना उच्च न्यायालय में दांडिक

पुनरीक्षण आवेदन फाइल किया। उच्च न्यायालय ने पक्षकारों के विद्वान काउंसेल को सुनने के पश्चात् शेख लतफुर रहमान और अन्य बनाम राज्य[1] वाले मामले में पूर्ण न्यायपीठ के विनिश्चय के विनिश्चय-आधार का अवलंब लेते हुए पुनरीक्षण आवेदन खारिज कर दिया। उच्च न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा पारित इस आदेश के विरुद्ध अपीलार्थियों ने संविधान के अनुच्छेद 136 के अधीन विशेष इजाजत से इस न्यायालय में समावेदन किया है।

4. अपीलार्थियों के विद्वान काउंसेल ने यह दलील दी कि जब तक विचारण के दौरान साक्ष्य अभिलिखित नहीं किया जाए, सेशन न्यायाधीश को संहिता की धारा 319 के अधीन संज्ञान करने और अन्वेषण के दौरान संगृहीत सामग्री जो संहिता की धारा 193 के स्पष्ट आदेश को देखते हुए संहिता की धारा 173 के अधीन अग्रेषित रिपोर्ट में दी गई थी के एकमात्र आधार पर अभियुक्तों को पक्षकार बनाने की कोई अधिकारिता नहीं है। पूर्वोक्त तथ्यों के प्रकाश में जो प्रश्न विचारणार्थ उद्भूत होता है वह यह है कि क्या विद्वान सेशन न्यायाधीश उस प्रक्रम पर जब कार्यवाहियां उसके समक्ष लंबित थीं विचारण प्रारंभ किए बिना और इसमें साक्ष्य अभिलिखित न करते हुए संहिता की धारा 161 के अधीन अभिलिखित कथनों को सम्मिलित करते हुए एकमात्र दस्तावेजों के आधार पर विधि के अधीन संहिता की धारा 319 का आश्रय लेने में न्यायोचित था।

5. धारा 319 निरसित दंड प्रक्रिया संहिता, 1898 (जिसे इसमें इसके पश्चात् "पुरातन संहिता" कहा गया है) की धारा 351 की समनुषंगी है। इस धारा का वाचन संहिता की धारा 319 के प्रकाश में किया जाना चाहिए। ऐसा किए जाने से पूर्व हमारे लिए यह कथन करना आवश्यक है कि संहिता की यथाविद्यमान धारा 319 पुरातन संहिता की धारा 351 का पुनर्प्रारूपण है जो विधि आयोग की 41वीं रिपोर्ट द्वारा की गई इन सिफारिशों पर आधारित है :—

> "बहुधा नहीं तो कभी-कभी ऐसा होता है कि किसी अभियुक्त के विरुद्ध मामले की सुनवाई करने वाला मजिस्ट्रेट साक्ष्य के आधार पर यह निष्कर्ष निकालता है कि उसके समक्ष के अभियुक्त से भिन्न व्यक्ति भी इस अपराध से या संबद्ध अपराध से संबंधित है। यह उचित ही है कि मजिस्ट्रेट को उसे कार्यवाहियों में भाग लेने के लिए बुलाने की शक्ति प्राप्त होनी चाहिए। धारा 351 में ऐसी स्थिति के लिए उपबंध है। किंतु यदि कोई व्यक्ति न्यायालय में उपस्थित हो जाता है, तब उसे निरुद्ध करके उसके विरुद्ध कार्यवाही की जा सकती है। धारा 351 में ऐसे व्यक्ति को यदि वह न्यायालय में उपस्थित नहीं होता है, समन किए जाने के लिए कोई अभिव्यक्त उपबंध नहीं है। ऐसा उपबंध धारा 351 को उचित रूप में व्यापकार्थक बनाएगा और हम ऐसी स्थिति के लिए अब अभिव्यक्ततः उपबंध करना उपयुक्त समझते हैं। (पैरा 24.80)
>
> जहां तक विद्यमान विधि के अधीन वास्तविक स्थिति का संबंध है, इस बाबत मतभेद है और हमारी समझ से यह स्पष्ट किया जाना चाहिए। हमें ऐसा प्रतीत

[1] [1985] पी० एल० जे० आर० 640=[1985] क्रिमिनल एल० जे० 1238.

होता है कि इस विशिष्ट उपबंध का मुख्य प्रयोजन यह है कि समस्त संदिग्ध व्यक्तियों के विरुद्ध संपूर्ण मामले में शीघ्र कार्यवाही की जानी चाहिए और सुविधा की दृष्टि से यह अपेक्षित है कि नवीन अभियुक्त के विरुद्ध संज्ञान उसी रीति में किया जाना चाहिए जिस प्रकार कि अन्य अभियुक्तों के विरुद्ध। अतः, हम धारा 351 को व्यापकार्थक बनाने और यह उपबंध करने के लिए कि यदि कार्यवाही के दौरान किसी नए व्यक्ति का अभियुक्त के रूप में पता चलता है, तो संज्ञान किए जाने की रीति में कोई अंतर नहीं पड़ेगा इसे व्यापकार्थक बनाने के लिए इसके पुनर्प्रारूपण के लिए प्रस्ताव करते हैं।" (पैरा 24.81)

6. उपर्युक्त पैराओं से यह स्पष्ट है कि विधि आयोग ने यह सुझाव दिया कि धारा 351 का (i) न्यायालय को ऐसे किसी व्यक्ति को जो न्यायालय में उपस्थित नहीं है नाम दिए गए अभियुक्तों के साथ विचारण किए जाने के निमित्त समन करने के लिए सशक्त बनाने और (ii) न्यायालय को यह स्पष्ट करते हुए कि नए अभियुक्त के विरुद्ध संज्ञान किए जाने की रीति में कोई अंतर नहीं होगा इस नए अभियुक्त के विरुद्ध संज्ञान करने के लिए न्यायालय को समर्थ बनाने की दृष्टि से पुनर्प्रारूपण किया जाना चाहिए। विधि आयोग द्वारा की गई सिफारिशों के अनुसरण में पुरातन संहिता की धारा 351 को वर्तमान संहिता में धारा 319 बना दिया गया। ये दोनों उपबंध साथ-साथ इस प्रकार हैं :—

"**पुरातन संहिता**

धारा 351. न्यायालय में हाजिर होने वाले अपराधियों का निरोध—

(1) कोई व्यक्ति, जो यद्यपि गिरफ्तार न होकर या समनित न होते हुए दण्ड न्यायालय में हाजिर हुआ है, ऐसे न्यायालय द्वारा किसी अपराध की, जिसका प्रसंज्ञान ऐसा न्यायालय कर सकता है और जिसका किया जाना साक्ष्य से प्रतीत हो, जांच या परीक्षण के प्रयोजन के लिए निरुद्ध किया जा सकेगा और उसके विरुद्ध ऐसी कार्यवाही की जा सकेगी मानो कि वह गिरफ्तार या समन किया गया था।

(2) जबकि अध्याय 18 के अधीन जांच के अनुक्रम में या परीक्षण आरंभ होने के पश्चात् ऐसा निरोध किया जाता है तब ऐसे व्यक्ति के बारे में कार्यवाहियां फिर से प्रारंभ होंगी और साक्षियों को फिर से सुना जाएगा।"

"**नवीन संहिता**

धारा 319, अपराध के दोषी प्रतीत होने वाले अन्य व्यक्तियों के विरुद्ध कार्यवाही करने की शक्ति—जहां किसी अपराध की जांच या विचारण के दौरान साक्ष्य से यह प्रतीत होता है कि किसी व्यक्ति ने, जो अभियुक्त नहीं है, कोई ऐसा अपराध किया है जिसके लिए ऐसे व्यक्ति का अभियुक्त के साथ विचारण किया जा सकता है, वहां न्यायालय उस व्यक्ति के विरुद्ध उस अपराध के लिए जिसका उसके द्वारा किया जाना प्रतीत होता है, कार्यवाही कर सकता है।

(2) जहां ऐसा व्यक्ति न्यायालय में हाजिर नहीं है वहां पूर्वोक्त प्रयोजन के

लिए उसे मामले की परिस्थितियों की अपेक्षानुसार गिरफ्तार या समन किया जा सकता है।

(3) कोई व्यक्ति जो गिरफ्तार या समन न किए जाने पर भी न्यायालय में हाजिर है, ऐसे न्यायालय द्वारा उस अपराध के लिए जिसका उसके द्वारा किया जाना प्रतीत होता है, जांच या विचारण के प्रयोजन के लिए निरुद्ध किया जा सकता है।

(4) जहां न्यायालय किसी व्यक्ति के विरुद्ध उपधारा (1) के अधीन कार्यवाही करता है, वहां—

(क) उस व्यक्ति के बारे में कार्यवाही फिर से प्रारंभ की जाएगी और साक्षियों को फिर से सुना जाएगा;

(ख) खण्ड (क) के उपबंधों के अधीन रहते हुए मामले में ऐसी कार्यवाही की जा सकती है मानो वह व्यक्ति उस समय अभियुक्त व्यक्ति था जब न्यायालय ने उस अपराध का संज्ञान किया था जिस पर जांच या विचारण प्रारंभ किया गया था।"

7. पुरातन संहिता की धारा 351 में ऐसे किसी भी व्यक्ति को, जो यद्यपि गिरफ्तार न होकर या समनित न होते हुए दंड न्यायालय में उपस्थित हुआ है ऐसे न्यायालय द्वारा किसी अपराध की जिसका प्रसंज्ञान ऐसा न्यायालय कर सकता है, जांच या विचारण के प्रयोजन के लिए निरुद्ध किया जा सकता था, यदि इस प्रकार अभिलिखित साक्ष्य से यह प्रकट है कि उसने अन्य व्यक्तियों के साथ अपराध किया है। विधि आयोग की रिपोर्ट के पैरा 24.80 में उसके द्वारा की गई सिफारिश को ध्यान में रखते हुए धारा 319 की उपधारा (2) अंतःस्थापित की गई जिसके द्वारा न्यायालय को ऐसे किसी व्यक्ति को जो अन्य व्यक्तियों के साथ अपराध किए जाने में अंतर्वलित प्रतीत होता है किंतु जो न्यायालय में उपस्थित नहीं है गिरफ्तार या समन किए जाने के लिए व्यापक शक्ति प्रदान की गई है। आगे यह भी उल्लेख करना महत्वपूर्ण है कि "जिसका प्रसंज्ञान ऐसा न्यायालय कर सकता है" शब्दों का विधानमण्डल द्वारा लोप कर दिया गया है। इसके बजाय नवीन जोड़ी गई उपधारा 4(ख) में अभिव्यक्ततः यह कहा गया है कि नए (जोड़े गए) अभियुक्त के विरुद्ध मामले में कार्यवाही इस प्रकार की जा सकेगी मानो वह व्यक्ति उस समय अभियुक्त व्यक्ति था जब न्यायालय ने अपराध का संज्ञान किया। ऐसा उपरि उद्धृत पैरा 24.81 में विधि आयोग की, की गई सिफारिश के अनुसरण में किया गया। अतः, यह स्पष्ट है कि संहिता की धारा 319 पुरातन संहिता की धारा 351 का पुनर्प्रारूपित रूप है। इसमें किए गए परिवर्तन विधि आयोग की सिफारिश पर इसे व्यापकार्थक बनाने के लिए किए गए ताकि न्यायालय में उपस्थित न होने वाले व्यक्ति को भी मामले की यथा अपेक्षित परिस्थितियों में गिरफ्तार या समनित किया जा सके और "जिसका प्रसंज्ञान ऐसा न्यायालय कर सकता है" शब्दों को निकालकर और खण्ड (ख) जोड़कर यह स्पष्ट कर दिया गया है कि लंबित कार्यवाहियों में जहां तक संज्ञान किए जाने का संबंध है किसी नए व्यक्ति को अभियुक्त के रूप में पक्षकार बनाने से कोई अंतर नहीं पड़ेगा। दूसरे शब्दों में यह स्पष्ट कर दिया गया

1993(1) eILR(PAT) SC 1

है कि जोड़े गए व्यक्ति के विरुद्ध संज्ञान उसी प्रकार किया गया समझा जाएगा जैसे कि अन्य सह-अभियुक्तों के विरुद्ध मूल रूप से किया गया। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि संज्ञान किए जाने में कठिनाई जो न्यायालय महसूस करते थे अब समाप्त कर दी गई है। यह धारा संज्ञान उपरांत प्रक्रम पर उस समय प्रवर्तन में आएगी जब न्यायालय को विचारण के दौरान अभिलिखित साक्ष्य से यह प्रतीत हो कि अपराधियों के रूप में नाम दिए गए व्यक्तियों से भिन्न किसी व्यक्ति ने उस घटना से संबंधित जिसके लिए सह-अभियुक्तों का विचारण किया जा रहा है कोई अपराध किया है।

8. तथापि, अपीलार्थियों के काउंसेल ने यह दलील दी कि धारा 319 के पूर्ण समावेशी उपबंध होने के कारण इसके अधीन दी गई शक्ति का प्रयोग नियमनिष्ठ रूप में इस धारा के निबंधनों के अनुसार किया जाना चाहिए जिनके अनुसार इस शक्ति का प्रयोग केवल उसी स्थिति में अनुज्ञेय है यदि किसी अपराध की जांच या विचारण के दौरान "साक्ष्य से यह प्रतीत होता हो" कि विचारण के लिए पहले से उपस्थित अभियुक्त के अलावा किसी व्यक्ति ने प्रश्नगत घटना से उद्भूत कोई अपराध किया है। काउंसेल ने यह दलील दी कि "साक्ष्य" प्रस्तुत किए जाने से पूर्व इस शक्ति का प्रयोग नहीं किया जा सकता है क्योंकि व्यक्ति के अंतर्वलित होने की बात विचारण के दौरान प्रस्तुत साक्ष्य से अवश्य प्रतीत होनी चाहिए क्योंकि इस प्रक्रम पर न्यायालय को उस व्यक्ति की सह अपराधिता के बारे में जो उसके समक्ष अपराध के किए जाने में आरोपित नहीं किया गया है अपने विवेक का प्रयोग करना चाहिए। अतः, उसने यह दलील दी कि वर्तमान मामले में क्योंकि विचारण प्रारंभ नहीं हुआ है और अभियोजन पक्ष ने कोई साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया है, शक्ति के प्रयोग किए जाने का यह प्रक्रम नहीं है।

9. हमारे समक्ष निवेदित दलीलों का मूल्यांकन करने के लिए कुछ उपबंधों की अवेक्षा करना आवश्यक है। संहिता की धारा 190 में ऐसी विभिन्न रीतियां उपवर्णित हैं जिनमें मजिस्ट्रेट किसी अपराध का संज्ञान कर सकता है अर्थात् अपराधी को दंडित करने के लिए विधि को प्रवर्तित करने की दृष्टि से किसी अपराध के किए जाने को प्रकट करने वाले अभिकथन की अवेक्षा कर सकता है। इस उपबंध के अधीन अभिकथित रूप से किए गए अपराध का संज्ञान खण्ड (क), (ख) और (ग) में दिए गए तीन प्रकार से किया जा सकता है। इस का उद्देश्य किसी नागरिक की पुलिस के अत्याचारों के विरुद्ध उसे सीधे मजिस्ट्रेट के समक्ष समावेदन करने का अधिकार प्रदान करके यदि पुलिस कार्रवाई नहीं करती है या वह यह विश्वास करने का कारण रखता है कि पुलिस द्वारा ऐसी कोई कार्रवाई नहीं की जाएगी सुरक्षा सुनिश्चित करना है। यद्यपि "संज्ञान करना" अभिव्यक्ति परिभाषित नहीं की गई है। तथापि, इस न्यायालय के विभिन्न विनिश्चयों से यह स्थिर है कि जब मजिस्ट्रेट अभियोगों की अवेक्षा करे और परिवाद या पुलिस रिपोर्ट या सूचना में किए गए अभिकथनों की बाबत अपने विवेक का प्रयोग करे और यह समाधान होने पर कि अभिकथन यदि साबित हो जाते हैं, तो अपराध गठित करेंगे अभिकथित अपराधी के विरुद्ध न्यायिक कार्यवाहियां प्रारंभ करने का विनिश्चय करे, तो यह कहा जाएगा कि उसने अपराध का संज्ञान कर लिया है। इस तथ्य को ध्यान में रखना आवश्यक है कि संज्ञान अपराध का किया जाता है न कि अपराधी का। मात्र विवेक का प्रयोग किया जाना उस समय तक संज्ञान किया जाना नहीं होगा जब

तक कि मजिस्ट्रेट संहिता की धारा 200/204 के अधीन कार्यवाही के लिए ऐसा न करे (जमुना सिंह और अन्य बनाम भदई शाह[1] वाला मामला दृष्टव्य है)। अतः, यह स्पष्ट है कि यदि किसी संज्ञेय अपराध से संबंधित संहिता की धारा 154 के अधीन किसी परिवाद की प्राप्ति पर कोई अपराध रजिस्टर किया जाता है और संबंधित पुलिस अधिकारी अन्वेषण आरंभ करके अंततः संहिता की धारा 173 के अधीन पुलिस रिपोर्ट प्रस्तुत कर देता है, तो मजिस्ट्रेट संज्ञान कर सकता है और यदि अपराध अनन्यतः सेशन न्यायालय द्वारा विचारणीय है, तो उसे धारा 209 में उपवर्णित प्रक्रिया का अनुसरण करना चाहिए। इस धारा में यह उपबंधित है कि धारा 2(द) में यथापरिभाषित अथवा अन्यथा किसी पुलिस रिपोर्ट पर संस्थित किसी मामले में अभियुक्त मजिस्ट्रेट के समक्ष उपस्थित होता है या प्रस्तुत किया जाता है और मजिस्ट्रेट को यह प्रतीत होता है कि अपराध अनन्य रूप से सेशन न्यायालय द्वारा विचारणीय है, तो वह मामले को सेशन न्यायालय को सुपुर्द कर देगा और अभियुक्त को अभिरक्षा के लिए प्रतिप्रेषित कर देगा। पुरातन संहिता की धारा 173 और वर्तमान में विद्यमान धारा 193 का परस्पर संबंध है और इसे इस प्रक्रम पर उद्धृत किया जा सकता है :—

> "पुरातन संहिता
>
> धारा 193—अपराधों का सत्र न्यायालय द्वारा प्रसंज्ञान—(1). इस संहिता द्वारा या किसी अन्य तत्समय प्रवृत्त विधी द्वारा अभिव्यक्त रूप से अन्यथा उपबंधित के सिवाय कोई सत्र न्यायालय आरंभिक क्षेत्राधिकार के न्यायालय के रूप में किसी अपराध का प्रसंज्ञान तब तक न करेगा जब तक कि अभियुक्त को तन्निमित सम्यक् सशक्त किए गए मजिस्ट्रेट द्वारा उसे सुपुर्द न कर दिया गया हो।'
>
> "नवीन संहिता
>
> धारा 193—अपराधों का सेशन न्यायालयों द्वारा संज्ञान—इस संहिता द्वारा या तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि द्वारा अभिव्यक्त रूप से जैसा उपबंधित है उसके सिवाय कोई सेशन न्यायालय आरंभिक अधिकारिता वाले न्यायालय के रूप में किसी अपराध का संज्ञान तब तक नहीं करेगा जब तक मामला इस संहिता के अधीन मजिस्ट्रेट द्वारा उसके सुपुर्द नहीं कर दिया गया है।"

10. यह पूर्णतः स्पष्ट है कि पुरातन संहिता के उपबंध के अधीन सेशन न्यायालय उस समय तक किसी अपराध का आरंभिक अधिकारिता वाले न्यायालय के रूप में संज्ञान नहीं कर सकता था जब तक कि अभियुक्त को उसे सुपुर्द न कर दिया गया हो, जब कि वर्तमान में विद्यमान पुनर्प्रारूपित धारा के अधीन "अभियुक्त" शब्द के स्थान पर "मामला" शब्द का प्रयोग किया गया है। जैसा कि पहले स्पष्ट किया जा चुका है धारा 190 के अधीन संज्ञान अपराध का किया जाता है, न कि अपराधी का। इसी प्रकार धारा 193 के अधीन अब मामले के सुपुर्द किए जाने पर जोर दिया गया है, न कि अपराधी के सुपुर्द किए जाने पर। इसी प्रकार धारा 209 में मामले को सेशन न्यायालय को सुपुर्द किए जाने की बाबत

[1] [1964] 5 एस० सी० आर० 37.

उल्लेख है। इन दोनों उपबंधों का साथ-साथ वाचन किए जाने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि पुरातन संहिता के अधीन धारा 193 की भाषा को देखते हुए जब तक अभियुक्त को सेशन न्यायालय को सुपुर्द नहीं कर दिया जाता उक्त न्यायालय किसी अपराध का आरंभिक अधिकारिता वाले न्यायालय के रूप में संज्ञान नहीं कर सकता था। किंतु अब वर्तमान में विद्यमान धारा 193 के अधीन एक बार मामला सुपुर्द कर दिए जाने पर कोई निर्बंधन नहीं रहेगा। इस संबंध में और अधिक विवेचन किए जाने से पूर्व निर्णयज विधि पर चर्चा करना उपयुक्त रहेगा।

11. पुरातन संहिता की धारा 193 में सेशन न्यायालय को उस समय तक किसी अपराध का आरंभिक अधिकारिता वाले न्यायालय के रूप में संज्ञान करने से प्रतिषिद्ध किया गया है जब तक कि मजिस्ट्रेट द्वारा अभियुक्त को उसे सुपुर्द न कर दिया जाए या संहिता में अभिव्यक्त उपबंध न हो या कोई प्रतिकूल विधि न हो। उक्त उपबंध के संदर्भ में इस न्यायालय ने पी० सी० गुलाटी बनाम एल० आर० कपूर[1] वाले मामले में पृष्ठ 568 पर यह मताभिव्यक्ति की :—

> "जब कोई मामला सेशन न्यायालय को सुपुर्द किया जाता है, तो सेशन न्यायालय को पहले यह अवधारित करना होता है कि क्या मामला सुपुर्द किया जाना उचित है। यदि उसका यह मत है कि मामला सुपुर्द किया जाना विधि की दृष्टि में दोषपूर्ण है, तो वह मामले को उच्च न्यायालय के लिए निर्दिष्ट करेगा जो संहिता की धारा 215 के अधीन कार्यवाही अभिखंडित किए जाने के लिए सक्षम है। सेशन न्यायालय मामले में तभी विचारण की कार्यवाही करेगा यदि वह सुपुर्दगी को विधि की दृष्टि में सही समझता है। इस संदर्भ में ही सेशन न्यायालय को आरंभिक अधिकारिता वाले न्यायालय के रूप में मामले का संज्ञान करना पड़ता है और इसी संज्ञान की बाबत संहिता की धारा 193 में निर्देश किया गया है।"

12. जोगिन्दर सिंह बनाम पंजाब राज्य[2] वाले मामले के तथ्य इस प्रकार थे कि जोगिन्दर सिंह और चार अन्य व्यक्तियों के विरुद्ध इस अभिकथन पर एक आपराधिक मामला रजिस्टर किया गया कि उन्होंने गृह अतिचार किया था और दो व्यक्तियों को क्षतियां कारित की थीं। अन्वेषण के दौरान पुलिस ने जोगिन्दर सिंह और राम सिंह (मामले के अपीलार्थियों) को निर्दोष पाया और शेष तीन व्यक्तियों के विरुद्ध आरोपपत्र प्रस्तुत किया। विद्वान मजिस्ट्रेट जिसने प्रारंभिक जांच की तीनों अभियुक्तों को सेशन न्यायालय के लिए सुपुर्द कर दिया और तत्पश्चात् अपर सेशन न्यायाधीश, लुधियाना ने उनके विरुद्ध आरोप विरचित किए। विचारण के समय दो साक्षियों का साक्ष्य अभिलिखित किया गया और इस समय अपीलार्थियों की सह-अपराधिता का पता चला। तत्पश्चात्, इत्तिला देने वाले व्यक्ति के कहने पर लोक अभियोजक ने उन तीनों अभियुक्तों के साथ जिन्हें न्यायालय में पहले ही आरोपित किया गया था दोनों अपीलार्थियों को समन किए जाने और उनके विचारण के लिए समावेदन किया। इस आवेदन का मुख्यतः इस आधार पर विरोध किया गया कि सेशन न्यायाधीश को

[1] [1966] 1 एस० सी० आर० 560.

[2] [1979] 4 उम० नि० प० 773=ए० आई० आर० 1979 एस० सी० 339.

1993(1) eILR(PAT) SC

दोनों अपीलार्थियों को समन करने और पुलिस रिपोर्ट में पहले नाम दिए गए तीन व्यक्तियों के साथ उनका विचारण किए जाने का उन्हें निदेश करने की कोई अधिकारिता या शक्ति नहीं थी। इस आक्षेप को नामंजूर कर दिया गया और विद्वान अपर सेशन न्यायाधीश ने उपधारणातः संहिता की धारा 319 के अधीन दोनों अपीलार्थियों को उपस्थित होने के लिए निदेश करते हुए एक आदेश पारित किया और आगे यह भी निदेश किया कि उनका न्यायालय में पहले से आरोपित तीनों अभियुक्तों के साथ विचारण किया जाएगा। उच्च न्यायालय ने पुनरीक्षण आवेदन खारिज कर दिया और तत्पश्चात् अपीलार्थियों ने विशेष इजाजत द्वारा इस न्यायालय में समावेदन किया। मूल प्रश्न संहिता की धारा 319 की व्याप्ति और क्षेत्र से संबंधित था। इस न्यायालय ने नवीन संहिता के तत्समान उपबंधों के साथ-साथ पुरातन संहिता के सुसंगत उपबंधों पर विचार करते हुए यह मताभिव्यक्ति की :—

> "अतः यह स्पष्ट है कि संहिता की धारा 193 के साथ पठित धारा 209 के अधीन जब कोई मामला किसी अपराध से संबंधित सेशन न्यायालय को सुपुर्द किया जाता है, तो सेशन न्यायालय अपराध का संज्ञान करता है न कि अभियुक्त का और सेशन न्यायालय द्वारा एक बार मामले पर किसी अभियुक्त के विरुद्ध सुपुर्दगी आदेश किए जाने के परिणामस्वरूप विचार किए जाने पर धारा 319(1) के अधीन शक्ति का प्रयोग किया जा सकता है और ऐसा न्यायालय ऐसे किसी व्यक्ति को जो उसके समक्ष अभियुक्त नहीं है अभियुक्त के रूप में सम्मिलित कर सकता है और उसे अन्य अभियुक्तों के साथ उस अपराध के लिए जो विचारण के समय अभिलिखित साक्ष्य से ऐसे सम्मिलित किए गए व्यक्ति द्वारा किया गया प्रतीत होता है विचारण किए जाने के लिए निदेश कर सकता है।"

13. इस मत को इस न्यायालय के अभी हाल ही के **सोहन लाल और अन्य बनाम राजस्थान राज्य**[1] वाले मामले में दोहराया गया। इस मामले में अपीलार्थियों के विरुद्ध प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज की गई। अन्वेषण पूरा होने पर पुलिस ने संहिता की धारा 173 के अधीन आरोप पत्र अग्रेषित किया। न्यायिक मजिस्ट्रेट ने संज्ञान करने के उपरांत अपीलार्थी सं० 4 और 5 को उन्मोचित करने का आदेश किया और यह निदेश किया कि शेष तीनों अपीलार्थियों को भारतीय दण्ड संहिता की धारा 147, 323, 325 और 336 की बजाय केवल इसकी धारा 427 के अधीन आरोपित किया जाए और तत्पश्चात् आरोपपत्र अग्रेषित किया गया। अतः, अपर लोक अभियोजक ने घटना के शिकार एक व्यक्ति द्वारा हस्ताक्षरित एक आवेदन प्रस्तुत किया जिसमें यह प्रार्थना की गई कि संपूर्ण साक्ष्य के आधार पर भारतीय दण्ड संहिता की धारा 147, 325 और 336 के अधीन एक प्रथमदृष्ट्या मामला बनता है और यह निवेदन किया कि आरोप में संशोधन किया जाए और अभियुक्त व्यक्तियों को तदनुसार आरोपित किया जाए। अभियुक्त के अभिवाक् को अभिलिखित करने के उपरांत अभियोजन पक्ष ने साक्ष्य प्रस्तुत किया और साक्षियों की परीक्षा की। विद्वान मजिस्ट्रेट ने अपर लोक अभियोजक और प्रतिरक्षा पक्ष के काउंसेल को सुनने के पश्चात् तथा साक्ष्य की विवेचना करने के उपरांत अपीलार्थियों के विरुद्ध अन्य अपराधों का संज्ञान किया।

[1] [1991] 1 उम० नि० प० 882=(1990) 4 एस० सी० सी० 530.

उच्च न्यायालय में किया गया पुनरीक्षण आवेदन खारिज कर दिया गया। इस न्यायालय ने संहिता के सुसंगत उपबंधों पर विचार करने के उपरांत यह निष्कर्ष निकाला :—

> "धारा 319 न्यायालय को उन व्यक्तियों के विरुद्ध जो अपराध के दोषी प्रतीत नहीं होते हैं कार्यवाही करने के लिए सशक्त बनाती है। इस धारा की उप-धारा (1) और (2) में ऐसी स्थिति के लिए उपबंध है जब किसी अभियुक्त व्यक्ति के विरुद्ध किसी मामले की सुनवाई करने वाला न्यायालय साक्ष्य से यह निष्कर्ष निकाले कि उसके समक्ष अभियुक्त से भिन्न कोई व्यक्ति या कुछ व्यक्ति इस अपराध से सम्बद्ध हैं या उनमें से कोई व्यक्ति अपराध से सम्बद्ध है और इसमें न्यायालय को उस अपराध के लिए ऐसे व्यक्ति या व्यक्तियों के विरुद्ध कार्यवाही किए जाने के लिए सशक्त बनाया गया है जो उसके द्वारा या उनके द्वारा किया गया प्रतीत होता है और वह इस प्रयोजनार्थ आदेशिका जारी करेगा। इसमें यह उपबंधित है कि किसी नए पता चले अभियुक्त के विरुद्ध संज्ञान उसी रीति में किया गया समझा जाएगा जिसमें पूर्ववर्ती अभियुक्त के विरुद्ध अपराध का पहले संज्ञान किया गया था। इसमें वास्तव में पहले प्रारंभ की गई कार्यवाही से उद्भूत मामले का उल्लेख है। इस धारा की व्याप्ति इतनी व्यापक है कि इसमें प्राइवेट परिवाद पर संस्थित मामले भी सम्मिलित हैं।"

14. अपीलार्थियों के विद्वान काउंसेल ने यह दलील दी कि सेशन न्यायालय द्वारा एक बार उपर्युक्त **गुलाटी**[1] वाले मामले में स्पष्ट किए गए सीमित अर्थ में संज्ञान किए जाने पर, ऐसे व्यक्ति को जिसका नाम पुलिस रिपोर्ट में नहीं दिया गया है समन या गिरफ्तार करने की शक्ति का प्रयोग संहिता की धारा 319 के अधीन केवल तभी किया जा सकता है यदि पुरोभाव्य शर्त अर्थात् विचारण प्रारंभ किए जाने और साक्ष्य अभिलिखित किए जाने की शर्त पूरी कर दी जाती है। उसने यह दलील दी कि यह ऊपर दिए गए अंतिम दोनों मामलों से स्पष्ट है जिनमें शक्ति का प्रयोग केवल पुरोभाव्य शर्त पूरी किए जाने पर किया गया था और जिनमें किसी व्यक्ति की सह-अपराधिता जिसे पुलिस रिपोर्ट में अपराधी के रूप में दर्शित नहीं किया गया है विचारण के दौरान अभिलिखित साक्ष्य से प्रकट होती थी। यह प्रथमदृष्ट्या प्रतीत होना चाहिए तथापि साथ ही यह भी ध्यान रखा जाना चाहिए कि दोनों मामलों में न्यायालय से इस बाबत विचार किए जाने के लिए अनुरोध नहीं कहा गया कि क्या सेशन न्यायालय जिसे कोई मामला संहिता की धारा 209 के अधीन विचारण के लिए सुपुर्द किया जाता है संज्ञान करते हुए ऐसे किसी व्यक्ति को अन्य व्यक्तियों के साथ विचारण के लिए समन कर सकता है जिसे पुलिस रिपोर्ट में अपराधी दर्शित नहीं किया गया है यदि उसे मामले की पत्रावली से अपराध किए जाने में उसकी सह-अपराधिता का प्रथमदृष्ट्या पता चलता है और यदि अन्वेषक अधिकारी द्वारा अपराधी के रूप में उसका नाम छोड़ा जाना उचित नहीं है।

15. दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 319 की उपधारा (1) का सामान्य परिशीलन किए जाने पर इस बाबत संदेह नहीं किया जा सकता है कि जांच या विचारण के दौरान

---

[1] [1966] 1 एस० सी० आर० 560.

1993(1) eILR(PAT) S

दिए गए साक्ष्य से यह प्रकट होना चाहिए कि ऐसा कोई भी व्यक्ति जो अभियुक्त नहीं है और जिसने कोई अपराध किया है उसका विचारण अभियुक्त के साथ किया जा सकता है। मेरे विचार से इस शक्ति का प्रयोग केवल तभी किया जा सकता है जब विचारण के दौरान साक्ष्य से ऐसा प्रतीत है, अन्यथा नहीं। अतः, इस उपधारा में विचारण के दौरान कुछ साक्ष्य से ऐसा प्रतीत होना अनुध्यात है ताकि न्यायालय प्रथमदृष्ट्या यह निष्कर्ष निकाल सके कि वह व्यक्ति भी जिसे उसके समक्ष आरोपित नहीं किया गया है अपराध के किए जाने में अंतर्वलित है और इसके लिए उसका उन व्यक्तियों के साथ जिनका नाम पहले पुलिस द्वारा लिया गया है विचारण किया जा सकता है। उस व्यक्ति का भी जिसे पहले छोड़ा जा चुका है संहिता की धारा 319 द्वारा प्रदत्त शक्ति की परिधि के अंतर्गत विचारण किया जा सकता है। अतः संहिता की धारा 319 का यथेष्ट रूप में वर्तमान सरीखे किसी मामले में आश्रय नहीं लिया जा सकता है जहां विचारण के समय कोई साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया गया है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि ऐसा प्रतीत होता है कि अपीलार्थी अभियोजन पक्ष द्वारा विचारण के लिए पहले प्रस्तुत किए गए अन्य व्यक्तियों के साथ अपराध किए जाने में अंतर्वलित हैं।

16. किंतु यह भी उल्लेखनीय है कि संहिता की धारा 319 संज्ञान उपरांत के प्रक्रम पर प्रवर्तन में आती है जब किसी जांच या विचारण के दौरान अन्वेषक कर्ता द्वारा नाम न लिए गए किसी व्यक्ति या कुछ व्यक्तियों के अंतर्वलित होने या उनकी सह-अपराधिता का पता चलता है जिससे यह आवश्यक हो जाता है कि उक्त उपबंध द्वारा प्रदत्त वैवेकिक शक्ति का प्रयोग किया जाए। धारा 319 का आश्रय आरंभिक अधिकारिता रखने वाले न्यायालय और उस न्यायालय द्वारा जिसे मामला सुपुर्द किया गया है या विचारण के लिए अंतरित किया गया है दोनों ही द्वारा लिया जा सकता है। अतः, धारा 319 का क्षेत्र इस अर्थ में सीमित है कि यह एक समर्थकारी उपबंध है जिसका आश्रय केवल तभी लिया जा सकता है यदि जांच या विचारण के दौरान प्रकट साक्ष्य से न्यायालय के समक्ष पहले से आरोपित व्यक्ति या व्यक्तियों से भिन्न किसी व्यक्ति या व्यक्तियों की सह-अपराधिता का पता चलता है। यदि संहिता की धारा 319 की वास्तविक व्याप्ति और परिधि यह है, तो प्रश्न यह है कि क्या संहिता में ऐसा कोई और भी उपबंध है जो न्यायालय को समरूप परिस्थितियों में वैसा ही आदेश पारित किए जाने के लिए हकदार बनाता है। इस उपबंध की सार्थकता को इस आधार पर ही न्यायोचित ठहराया जा सकता है कि धारा 319 में सभी संज्ञान उपरांत स्थितियों का समावेश नहीं है। अब जैसा कि पहले स्पष्ट किया जा चुका है कि धारा 319 में केवल एक स्थिति का उल्लेख है अर्थात् जांच या विचारण के दौरान लिए गए और अभिलिखित साक्ष्य से यह अपराधिता का पता चलना चाहिए। ऐसा मात्र उन मामलों में ही नहीं होता जहां किसी व्यक्ति के नाम का अन्वेषण के दौरान पता चलने के बावजूद अन्वेषणकर्ता उसे विचारण के लिए प्रेषित नहीं करता है अपितु उन मामलों में भी हो सकता है जहां ऐसे व्यक्ति की सह-अपराधिता का पता जांच या विचारण के समय अभिलिखित साक्ष्य के दौरान पहली बार चले। धारा 319 के आशय का इस प्रकार पता चलने पर यह स्पष्ट है कि इसके प्रवर्तन की व्याप्ति या इसका क्षेत्र केवल उन मामलों तक ही सीमित है जहां संज्ञान के उपरांत अपराध के किए जाने में किसी व्यक्ति या व्यक्तियों के अंतर्वलित होने का पता जांच या विचारण के समय अभिलिखित साक्ष्य के दौरान चले। इस

प्रकार यह धारा सभी स्थितियों को लागू नहीं होती है और इसका निर्वचन इस प्रकार नहीं किया जा सकता है कि इसमें न्यायालय के समक्ष आरोपित अन्य व्यक्तियों के साथ विचारण किए जाने वाले किसी व्यक्ति या व्यक्तियों को समन किए जाने की सभी प्रकार की शक्ति प्रदान की गई है ।

17. तब प्रश्न यह उद्भूत होता है कि क्या संहिता की धारा 319 की भांति संहिता के किसी अन्य उपबंध में ऐसी कोई शक्ति प्रदान की गई है अथवा क्या इस प्रकार की शक्ति संहिता की स्कीम से विवक्षित है ? हम उन दो अनुकल्पी रीतियों के बारे में पहले ही उल्लेख कर चुके हैं जिनमें संहिता की धारा 154 के अधीन पुलिस में सूचना दर्ज कराकर या मजिस्ट्रेट द्वारा परिवाद या सूचना प्राप्त किए जाने पर दंड विधि प्रवृत्त की जा सकती है । पुलिस द्वारा सूचना दर्ज किए जाने पर उसके द्वारा अन्वेषण किया जाएगा और संहिता की धारा 173 के अधीन इस पुलिस रिपोर्ट के आधार पर मजिस्ट्रेट द्वारा संहिता की धारा 190(1)(ख) के अधीन संज्ञान किया जा सकेगा । पश्चात्वर्ती रीति में मजिस्ट्रेट संहिता की धारा 156(3) के अधीन पुलिस द्वारा अन्वेषण के लिए आदेश दे सकता है या यथास्थिति संहिता की धारा 190(1)(क) या (ग) के साथ पठित इसकी धारा 204 के अधीन अपराध का संज्ञान किए जाने से पूर्व धारा 202 के अधीन स्वयं जांच कर सकता है । मजिस्ट्रेट द्वारा एक बार अपराध का संज्ञान किए जाने पर वह (उन मामलों को छोड़कर जहां मामला धारा 191 के अधीन अंतरित कर दिया गया है) अपराधी का विचारण करने की कार्यवाही कर सकता है या उसे संहिता की धारा 209 के अधीन यदि अपराध अनन्यतः सेशन न्यायालय द्वारा विचारण किए जाने योग्य है विचारण के लिए सुपुर्द कर सकता है । जैसा कि पहले कहा गया कि संज्ञान अपराध का किया जाता है, न कि अपराधी का । इस न्यायालय ने **रघुबंश दुबे** बनाम **बिहार राज्य**[1] वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया कि एक बार अपराध का संज्ञान किए जाने पर न्यायालय यह पता लगाने के लिए कर्तव्य-बद्ध है कि वास्तविक अपराधी कौन है और यदि न्यायालय यह निष्कर्ष निकालता है कि पुलिस द्वारा प्रस्तुत किए गए व्यक्तियों के अलावा कुछ अन्य व्यक्ति भी अंतर्वलित हैं, तो उन व्यक्तियों को समन करके उनके बिरुद्ध कार्यवाही करना उसका कर्तव्य है क्योंकि अतिरिक्त अभियुक्तों का समन किया जाना उसके द्वारा अपराध का संज्ञान करके आरंभ की गई कार्यवाही का भाग है । वर्तमान संहिता के प्रवर्तन में आने के पश्चात् भी विधिक स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं आया है। इसके प्रतिकूल उपर्युक्त दुबे[1] वाले मामले के विनिश्चय-आधार की **हरि राम सत्पथी** बनाम **टीकाराम अग्रवाल**[2] वाले मामले में पुष्टि की गई । इस प्रकार इस समय तक किसी कठिनाई का सामना नहीं करना पड़ा ।

18. इस मामले में हमें समस्या के निर्णायक पहलू पर विचार करना पड़ रहा है । संहिता की धारा 190(1) के अधीन संज्ञान किए जाने के पश्चात् वारण्ट मामलों में न्यायालय से अभिकथित अपराध के समय और स्थान और किसी व्यक्ति (यदि कोई है) जिसके विरुद्ध या किसी वस्तु (यदि कोई है) जिसके संबंध में अपराध किया गया की विशिष्टियों को अंतर्विष्ट करते हुए आरोप विरचित किए जाने की उपेक्षा की जाती है । किंतु आरोप विर-

[1] [1967] 2 एस० सी० आर० 423=ए० आई० आर० 1967 एस० सी० 1167.

[2] [1979] 3 उम० नि० प० 298=ए० आई० आर० 1978 एस० सी० 1568

चित किए जाने से पूर्व संहिता की धारा 227 में यह उपबंधित है कि यदि मामले के अभिलेख और उसके साथ दी गई दस्तावेजों पर विचार कर लेने पर, सेशन न्यायाधीश यह समझता है कि अभियुक्त के विरुद्ध कार्यवाही करने के लिए पर्याप्त आधार नहीं है तो वह अभियुक्त को उन्मोचित कर देगा और ऐसा करने के अपने कारणों को लेखबद्ध करेगा। केवल तभी जब न्यायाधीश की यह राय हो कि यह उपधारणा करने का आधार है कि अभियुक्त ने अपराध किया है वह आरोप विरचित करने की कार्यवाही करेगा और अभियुक्त के अभिवाक् को लेखबद्ध करेगा (धारा 228 दृष्टव्य है)। यह बिल्कुल स्पष्ट है कि इस बात का विनिश्चय करने के सीमित प्रयोजनार्थ कि क्या अभियुक्त के विरुद्ध आरोप विरचित किया जाए या नहीं न्यायाधीश से यह अपेक्षा की जाती है कि वह मामले के अभिलेख और उसके साथ दी गई दस्तावेजों की परीक्षा करे जिनमें पुलिस रिपोर्ट, संहिता की धारा 161 के अधीन अभिलिखित साक्षियों के कथन, अभिग्रहण ज्ञापन आदि सम्मिलित हैं। यदि न्यायाधीश इस सीमित प्रयोजनार्थ विवेक का प्रयोग करने पर यह निष्कर्ष निकालता है कि उसके समक्ष आरोपित अभियुक्त के अलावा अपराध के किए जाने में अन्य व्यक्तियों की सह-अपराधिता या उनका अंतर्वलित होना उसके समक्ष प्रस्तुत सामग्री से प्रथमदृष्ट्या प्रकट है, तो उसे क्या कार्रवाई करनी चाहिए ?

19. अंतः, राज्य के विद्वान काउंसेल ने यह दलील दी कि यदि दो मत संभव हों तो इसे प्रक्रिया का ऐसा मामला होने के कारण जिससे समनित व्यक्ति या व्यक्तियों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ने की संभावना नहीं है न्यायालय को उस मत को स्वीकार करना चाहिए जिससे न्याय हित की अभिवृद्धि होगी अर्थात् वास्तविक अपराधी को दण्डित करना चाहिए। यदि इस प्रकार का दृष्टिकोण नहीं अपनाया जाता है, तो मामला अन्वेषक अधिकारी के हाथों में चला जाएगा जो अपराधी को विचारण के लिए प्रस्तुत कर सकता है और नहीं भी कर सकता है चाहे प्रथमदृष्ट्या साक्ष्य उपलब्ध क्यों न सही और इससे विचारण न्यायालय के समक्ष किसी दी गई स्थिति में परिहार्य कठिनाइयां आएंगी। उदाहरणार्थ एक ऐसा मामला हो सकता है जिसमें दो व्यक्तियों 'क' और 'ख' ने आक्रमण किया और 'भ' की हत्या कर दी। न्यायाधीश के समक्ष प्रस्तुत की गई सामग्री से यह देखने में आया कि 'क' नामक व्यक्ति द्वारा घातक प्रहार किया गया जबकि 'ख' नामक व्यक्ति द्वारा किया गया प्रहार 'भ' के शरीर के ऐसे भाग पर था जो मर्मांग नहीं था। यदि 'क' नामक व्यक्ति का चालान पुलिस द्वारा नहीं किया जाता है, तो न्यायाधीश के लिए भारतीय दण्ड संहिता की धारा 34 के अधीन 'भ' की हत्या के लिए 'ख' नामक व्यक्ति को आरोपित करना दुष्कर हो जाएगा। यदि वह 'क' को समन नहीं कर सकता है, तो वह 'ख' के विरुद्ध किस प्रकार आरोप विरचित करेगा ? ऐसी स्थिति में उसे उस समय तक प्रतीक्षा करनी चाहिए जब तक कि विचारण के दौरान साक्ष्य प्रस्तुत नहीं कर दिया जाता ताकि वह संहिता की धारा 319 का आश्रय लेने में समर्थ बन सके। तब उसे सम्मिलित किए गए अभियुक्त के संबंध में कार्यवाही प्रारंभ करनी पड़ेगी और साक्षियों को बुलाना पड़ेगा। राज्य के काउंसेल ने यह दलील दी कि इससे जनता के समय का परिहार्य नुकसान होगा। अतः, उसने यह दलील दी कि इस न्यायालय को इस प्रकार अर्थान्वयन करना चाहिए जिससे न्यायहित पर प्रतिकूल प्रभाव न पड़े अपितु इसकी अभिवृद्धि हो।

1993(1) eILR(PAT) SC 1

20. हम इस न्यायालय के उपर्युक्त रघुवंश दुबे[1] और हरिराम[2] वाले मामलों में के विनिश्चयाधारों से यह पहले ही स्पष्ट कर चुके हैं कि न्यायालय द्वारा एक बार अपराध का (अपराधी का नहीं) संज्ञान किए जाने पर वास्तविक अपराधी का पता लगाना न्यायालय का कर्तव्य बन जाता है और यदि वह यह निष्कर्ष निकालता है कि पुलिस द्वारा विचारण के लिए प्रस्तुत किए गए व्यक्तियों के अलावा अपराध के किए जाने में अन्य व्यक्ति भी अंतर्वलित हैं, तो न्यायालय उन्हें पहले नाम दिये गये व्यक्तियों के साथ विचारण के लिए समन करने के लिए कर्तव्यबद्ध है, क्योंकि उन्हें समन किया जाना संज्ञान किए जाने की प्रक्रिया का मात्र एक भाग है। हम दोनों संहिताओं की धारा 193 की भाषा का अन्तर स्पष्ट कर चुके हैं। पुरातन संहिता में सेशन न्यायालय उस समय तक आरम्भिक अधिकारिता वाले न्यायालय के रूप में किसी अपराध का संज्ञान नहीं कर सकता था जब तक कि अभियुक्त को उसे सुपुर्द न कर दिया जाए जब कि वर्तमान संहिता के अधीन अभियुक्त शब्द के स्थान पर **मामला** शब्द प्रयोग करके निषेध को क्षीण कर दिया गया है। इस प्रकार, धारा 193 के सामान्य परिशीलन से जैसी कि यह तत्समय विद्यमान है यह स्पष्ट है कि संहिता के अधीन मजिस्ट्रेट द्वारा मामला एक बार सेशन न्यायालय को सुपुर्द किए जाने पर, सेशन न्यायालय की आरम्भिक अधिकारिता वाले न्यायालय के रूप में अपराध का संज्ञान करने की शक्ति पर अधिरोपित निर्बंधन जाता रहेगा। मजिस्ट्रेट द्वारा धारा 209 के अधीन मामला सेशन न्यायालय को सुपुर्द किए जाने पर धारा 193 के अधीन वर्जन सेशन न्यायालय में आरम्भिक अधिकारिता वाले न्यायालय के रूप में अपराध का संज्ञान करने की पूर्ण और अनियंत्रित अधिकारिता समाविष्ट हो जाने के कारण दूर हो जाएगा और उसकी इस अपराध का संज्ञान करने की शक्ति में ऐसे किसी भी व्यक्ति या व्यक्तियों को समन किया जाना सम्मिलित है जिसकी अपराध के किए जाने में सह-अपराधिता अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री से प्रथमदृष्टया परिलक्षित है। पटना उच्च न्यायालय की पूर्ण न्यायपीठ ने उपर्युक्त **शेख लतफुर रहमान**[3] वाले मामले में पुरातन संहिता के देखने में नवीन संहिता की धारा 193 में किए गए परिवर्तन को इस प्रकार ठीक ही उपयुक्त ठहराया :—

> "अत: अब धारा 193 के अधीन दी गई विधि में यह परिकल्पित और उपबंधित है कि अपराध गठित करने वाली संपूर्ण घटना का सेशन न्यायालय द्वारा उसे सुपुर्द किए जाने पर संज्ञान किया जाएगा और यह नहीं कि प्रत्येक अपराधी को वैयक्तिक रूप से इस प्रकार सुपुर्द किया जाना चाहिए अथवा यदि ऐसा नहीं किया जाता है, तब सेशन न्यायालय उन व्यक्तियों के विरुद्ध कार्यवाही करने के लिए शक्तिहीन होगा जिनके बारे में वह विचारण आरम्भ किए जाने के समय पूर्णत: आश्वस्त था कि वे अपराध के प्रथमदृष्टया अपराधी हैं।
>
> ×× ×× ×× ×× ××
>
> एक बार मामला सुपुर्द किए जाने पर धारा 193 का वर्जन दूर हो जाता है। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि शर्त पूरी हो जाने पर सेशन न्यायालय को अप-

---

1 [1967] 2 एस० सी० आर० 423=ए० आई० आर० 1967 एस० सी० 1167.

2 [1979] 3 उम० नि० प० 298=ए० आई० आर० 1978 एस० सी० 1568.

3 [1985] पी० एल० जे० आर० 640=(1985) क्रिमि० एल० जे० 1238.

1993(1) eILR(PAT) SC

राध के किसी भी अभियुक्त व्यक्ति को समन करने की सम्पूर्ण अधिकारिता प्राप्त होगी।"

हम पुरातन संहिता की धारा 193 और तत्समय विद्यमान उपबंध के मध्य के भेद से ससम्मान सहमत हैं।

21. उपर्युक्त कारणों से हम अपीलार्थियों के विद्वान काउंसेल की इस दलील से सहमत हैं कि संहिता की धारा 319 के अधीन शक्ति के प्रयोग किए जाने का प्रक्रम अभी नहीं आया है क्योंकि विचारण प्रारम्भ नहीं हुआ है और न ही साक्ष्य प्रस्तुत किया गया। चूंकि सेशन न्यायालय को संहिता की धारा 193 के अधीन अपीलार्थियों को समन करने की शक्ति प्राप्त है क्योंकि अपराध किए जाने में उनके अंतर्वलित होने की बात प्रथमदृष्टया मामले के अभिलेख से प्रकट है, हमें आक्षेपित आदेश में हस्तक्षेप करने का कोई कारण दिखाई नहीं देता है क्योंकि यह सुस्थिर है कि एक बार यह निष्कर्ष निकाले जाने पर कि शक्ति विद्यमान है, किसी गलत उपबंध के अधीन शक्ति के प्रयोग से आदेश अवैध या अविधिमान्य नहीं बन जाएगा। अतः, हम इस अपील को खारिज करते हैं।

अपील खारिज की गई।

मदन